बच्चों और शिक्षकों के मंच

कालू राम शर्मा

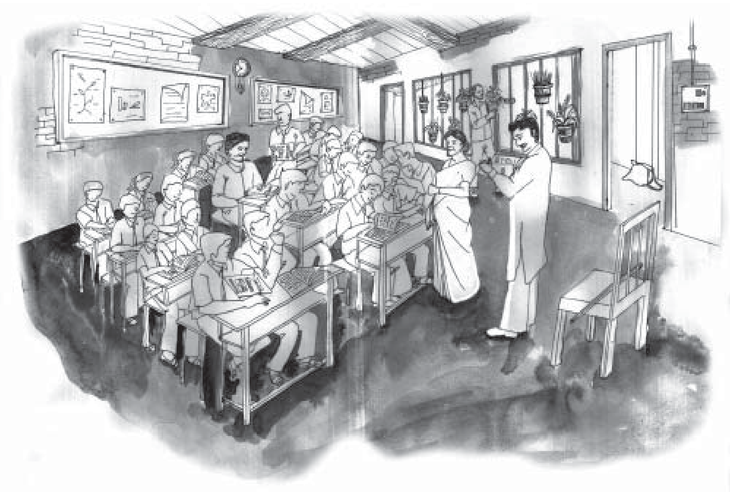

प्रार्थना के दौरान ही *एकलव्य* के एक साथी स्कूल में प्रवेश कर चुके थे। उन स्रोत सदस्य के पास एक बड़ा-सा झोला था जो भारी-भरकम लग रहा था। प्रार्थना सभा के उपरान्त मास्साब दौड़े और उनके भारी झोले का एक हिस्सा पकड़े स्कूल के बरामदे में ले आए।

झोले को बरामदे में एक तरफ रखते हुए, मास्साब बड़े ही उतावले होकर बोले, “लगता है कुछ ज़ोरदार चीज़ें लेकर आए हो।”

स्रोत सदस्य ने हँसते हुए कहा, “हाँ, ज़रूर!”

उधर बच्चों ने भी उन्हें आता हुआ देख लिया था, सो प्रार्थना खत्म होते ही बच्चे भी बरामदे में मँडरा रहे थे। मास्साब ने बच्चों को देख उन्हें कक्षा में जाने का इशारा किया। स्रोत सदस्य ने झोले में से किताबों का बण्डल निकालकर खोला, और कुछ रंग-बिरंगी पत्रिकाएँ अपनी बगल में दबाए कक्षा की ओर चल दिए।

कक्षा में पहुँचकर स्रोत सदस्य सबसे पीछे की लाइन में बैठ गए। मास्साब की मान-मनौवल के बावजूद *एकलव्य* के साथी ने आगे रखी कुर्सी पर बैठना उचित नहीं समझा। वे

बच्चों के बीच बैठे हुए थे। बच्चे उनसे वाकिफ थे। बच्चों में बाहरी व्यक्ति को लेकर घबराहट नहीं थी। न ही शिक्षक असामान्य हो रहे थे। सब कुछ सामान्य-सा था।

स्रोत सदस्य ने देखा कि कक्षा की खिड़कियों में तथा दीवार के सहारे-सहारे कुल्हड़ों में चने, गेहूँ, मटर, मक्का, मूँग व जुआर के पौधे लहलहा रहे हैं। स्रोत सदस्य ने एक कुल्हड़ को हाथ में उठाया और उसे ध्यान से देखने लगे। बच्चों का पूरा ध्यान स्रोत सदस्य की हरेक हरकत पर केन्द्रित था।

एक *चकमक* मेरे लिए भी

अब तक पिछली कतार के बच्चों ने एक-एक करके उन रंग-बिरंगी पत्रिकाओं को उठाकर उनके पन्ने पलटाना शुरू कर दिया था। आगे बैठे बच्चे पीछे नज़र गड़ाए हुए थे। वे अपने आप को रोक नहीं पा रहे थे। बच्चों के चेहरों को पढ़कर मास्साब ने हाज़िरी लेने के काम को मुल्तवी कर, *एकलव्य* के साथी को आगे आने का आग्रह किया, मगर उन्होंने पीछे से ही बातचीत प्रारम्भ कर दी।

बिना कोई भूमिका बाँधे उन्होंने उस रंग-बिरंगी पत्रिका को हाथ में लिया और चर्चा प्रारम्भ कर दी। उन्होंने *चकमक* की प्रतियाँ बच्चों को दे दीं। कुछ देर के लिए कक्षा में अफरातफरी का माहौल हुआ, और फिर सभी बच्चे अपनी-अपनी जगह पर बैठकर उस पत्रिका के पन्नों को पलटने लगे। एक पत्रिका मास्साब ने भी ले ली और वे भी पढ़ने लगे।

पूरी कक्षा, जिसमें शिक्षक भी शामिल थे, पत्रिका में खोई हुई थी। स्रोत सदस्य बड़ी तल्लीनता के साथ बच्चों का अवलोकन कर रहे थे।

मास्साब ने बच्चों का ध्यान अपनी ओर खींचा। वे बोले, "*चकमक* के बारे में तो तुम सब जानते ही हो। बताने की ज़रूरत नहीं। अगर चाहो तो यह अंक सभी बच्चों को मिल सकता है।" मास्साब ने स्रोत सदस्य की ओर देखा तो उन्होंने भी सिर हिलाकर सहमति दर्शायी।

इतना सुनकर बच्चे मास्साब के पास दौड़ पड़े। हालाँकि, *चकमक* उनके हाथ में थी, मगर वे उसे हमेशा के लिए पाना चाह रहे थे। बच्चों की आवाज़ कक्षा में गूँज रही थी – 'मैं भी! मैं भी! मुझे भी चाहिए! एक किताब मेरे लिए...'

मास्साब ने एक तरकीब निकाली। वे बोले, "चलो, ज़रा चुप हो जाओ सभी। ऐसा करते हैं कि जिनको भी *चकमक* चाहिए वे हाथ खड़ा कर दें। और हाँ, दो या तीन दोस्त मिलकर भी *चकमक* ले सकते हैं।"

जिन बच्चों ने हाथ खड़े किए थे, मास्साब ने उन बच्चों के नाम एक कागज़ की पर्ची पर लिख लिए। उतनी ही *चकमक* गिनकर मास्साब ने बच्चों में फिर से बाँट दी।

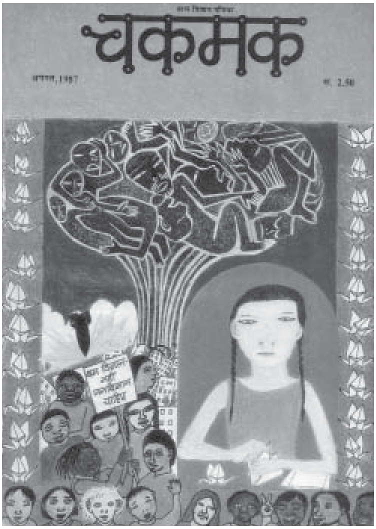

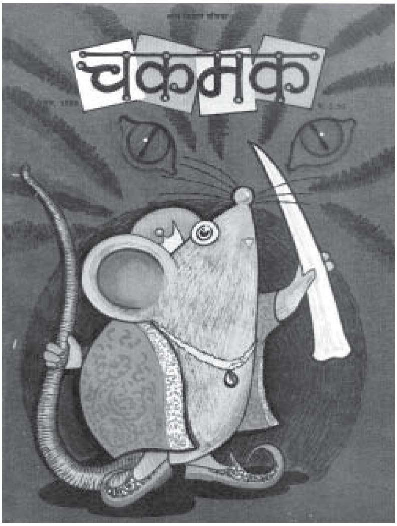

चकमक का आगाज़

दरअसल, *चकमक* का प्रकाशन *एकलव्य* ने इस मकसद से प्रारम्भ किया था कि बच्चों में स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित किया जा सके। 'होशंगाबाद विज्ञान' के अनुभवों के आधार पर जहाँ एक ओर 'सवालीराम' की कल्पना की गई थी, वहीं दूसरी ओर यह भी एहसास हुआ कि बच्चों की अभिव्यक्ति और उनसे संवाद करने के लिए कोई मंच होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में, 1982 में *एकलव्य* की स्थापना होने के बाद, एक पत्रिका की कल्पना की गई। एक ऐसी पत्रिका जो बच्चों की अभिव्यक्ति को जगह दे सके। बच्चे कैसे सोचते हैं, वे अपने आसपास की चीज़ों को कैसे देखते हैं – ऐसे तमाम मसलों को इस पत्रिका में शामिल किया जाए।

चकमक का पहला अंक जुलाई 1985 में प्रकाशित हुआ। और तब से ही, बिना रुके *चकमक* का प्रकाशन जारी है, और यह 'होशंगाबाद विज्ञान' में अध्ययनरत बच्चों के साथ-साथ पूरे देश के बच्चों की एक बेहतरीन पत्रिका बनी।

जब पत्रिका निकलनी शुरू हुई, तो जल्द ही यह समझ में आया कि हमारे यहाँ के सरकारी स्कूलों के बच्चे इस पत्रिका को छपी कीमत पर खरीदने की स्थिति में नहीं हैं। इस पर काफी मन्थन करते हुए एक नाममात्र की टोकन राशि तय की गई, जिस पर एक महीने के बाद इस

पत्रिका को उपलब्ध कराया जाना शुरू किया गया। दरअसल, *चकमक* एक अव्यावसायिक पत्रिका के रूप में ही प्रकाशित होती रही है।

उठती चिंगारियाँ

अगर *चकमक* के भीतर झाँककर देखें तो इसमें अधिकतर उन बच्चों की सामग्री मिलेगी जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। *चकमक* ने यह स्थापित कर दिखाया कि बच्चे, चाहे वे ग्रामीण भारत के हों या गरीब घराने के, सोचने-समझने में किसी भी तरह से कमतर नहीं होते। चकमक में छपी उनकी रचनाएँ और चित्र वगैरह यह दर्शाते हैं कि बच्चों को अगर अवसर मिले तो वे अपने आसपास के अवलोकनों और अनुभवों को बखूबी अभिव्यक्त करते हैं, सवाल उठाते हैं तथा अपनी बात व समझ को प्रकट करते हैं।

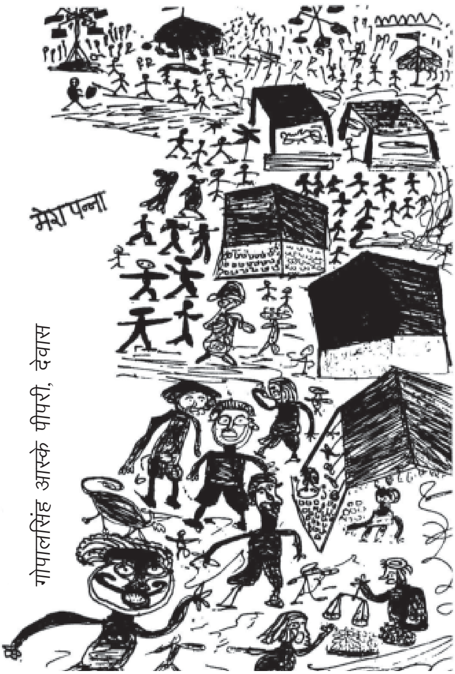

गोपालसिंह आरके पीपरी, देवास

मई 1987 की चकमक से 'मेरा पन्ना'। इसी तरह चकमक का काफी हिस्सा बच्चों की रचनाओं को समर्पित रहता।

चकमक का अधिकांश हिस्सा बच्चों को समर्पित होता था। साथ ही, इसमें बच्चों तथा शिक्षकों के सन्दर्भ की कहानियाँ-कविताएँ शामिल होतीं। जैसा कि पत्रिका के मुखपृष्ठ पर लिखा गया है – चकमक: बाल विज्ञान पत्रिका – वह सही मायनों में अपने नाम को सार्थक कर रही थी। इसमें एक-दो लेख किसी खास मसले पर होते – कभी साँपों पर, कभी आकाश पर, कभी वन्य जीवन या नमक पर, तो कभी ओज़ोन जैसे पर्यावरण के मसले पर। इनके साथ-साथ ही, 'अपनी प्रयोगशाला', 'कागज़ का खेल' व 'माथापच्ची' जैसे नियमित कॉलम *चकमक* के प्रमुख हिस्से बने। इसमें कई श्रृंखलाएँ भी चलीं, जिनमें 'खतरा: स्कूल!', 'आश्चर्यलोक में ऐलिस', 'दुनिया पक्षियों की' आदि प्रमुख हैं।

चकमक कभी भी बाज़ारू पत्रिका नहीं बनी। यही वजह रही कि यह मुख्यधारा की पत्रिकाओं की होड़ में न फँसकर, सही अर्थों में बच्चों की ज़ुबान बन सकी। *चकमक* में सामग्री

का चुनाव बड़े नपे-तुले ढंग से किया जाता। इसने कभी भी आदर्शों और उपदेशों का लबादा नहीं ओढ़ा, बल्कि यों कहें कि *चकमक* ने उनसे अच्छी-खासी दूरी बनाए रखी। दूर रही। *चकमक* ने यह भी दर्शाया कि बच्चे मौलिक रूप से कैसे सोचते हैं। इसने चित्रकला की उन प्रचलित व दकियानूसी परम्पराओं पर भी प्रहार किया जिनके तहत बच्चों को किसी कैलेंडर या किताब-डायरी वगैरह के चित्रों की नकल करने को मजबूर किया जाता रहा था।

जहाँ-जहाँ भी *चकमक* पहुँचती, बच्चे उसे सीने से लगाकर रखते। दरअसल, चकमक बच्चों के संवाद का ज़रिया बन चुकी थी। वे अपने परिवेश में घटने वाली विभिन्न घटनाओं को कहानी-कविताओं में पिरोते और *चकमक* को भेज देते। लगभग 40 पेज की यह पत्रिका बच्चों के घरों के ताक में वह स्थान बना पाई जो शायद ही कभी किसी स्कूली किताब ने बनाई हो।

चकमक ने बच्चों को एक नई दृष्टि दी थी। स्कूल में खाली समय में, बच्चे मौलिक चित्र बनाते, कहानी लिखते और *चकमक* को भेजते। परन्तु एक पत्रिका में सभी बच्चों की रचनाओं को स्थान तो नहीं दिया जा सकता न! इस पर और रास्ते निकाले गए। कई इलाकों से स्थानीय स्तर पर बाल-अखबार निकलने लगे। *सोन चिरैया, बाल चिरैया, बालकलम, दिशा* जैसी अनेक साइक्लोस्टाइल्ड तथा हस्तलिखित बाल पत्रिकाएँ निकलने लगीं, जो बच्चों की अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग बनीं। कई इलाकों में 'चकमक क्लब' प्रारम्भ हुए जिन्होंने ग्रामीण-कस्बाई बच्चों तथा युवाओं के बीच संवाद के द्वार खोले।

चकमक के प्रकाशन के प्रारम्भ से ही, मध्य प्रदेश शासन के शिक्षा विभाग ने प्रदेश के समस्त सरकारी स्कूलों में इसकी एक-एक प्रति भेजने का फैसला किया। जब यह निर्णय हुआ तो सबसे बड़ी समस्या आई - पूरे प्रदेश के स्कूलों के पतों की उपलब्धता। प्रदेश सरकार के पास अपने स्कूलों के पते ही नहीं थे। जब स्कूलों में *चकमक* पहुँचाई भी जाती, तो उनमें से कुछ वापस लौटकर आ जातीं। और जिन स्कूलों में पत्रिका पहुँचती, उनमें से कुछ में तो वे प्रधानाध्यापक की मेज़ पर धूल खा रही होतीं और कुछ प्रधानाध्यापक के घर पर पहुँच जातीं।

हालाँकि, 'होशंगाबाद विज्ञान' से सम्बन्धित स्कूलों में *चकमक* की नियमितता बरकरार रही। सघन अनुवर्तन, मासिक बैठकों, बाल मेलों और कई अन्य माध्यमों से यह शिक्षक साथियों, और उनके ज़रिए बच्चों तक, पहुँचती रहती।

बहरहाल, *चकमक* आज भी निकल रही है। उसकी बुनियाद में आज भी बच्चे हैं, मगर अब उसके स्वरूप में बहुत-से बदलाव आ गए हैं।

बहस-मुबाहिसा

एकलव्य के साथी ने कुछ समय कक्षा में बच्चों से बातचीत की और फिर वे मास्साब के साथ बाहर को आ गए। अब मास्साब उन्हें लेकर प्रधानाध्यापक के कमरे में जाकर बैठ गए। कमरे में कई प्रकार की चर्चाएँ प्रारम्भ हो गईं। *एकलव्य* के साथी ने एक और पत्रिका निकालकर प्रधानाध्यापक समेत सभी शिक्षकों को थमा दी। प्रधानाध्यापक ने पन्ने पलटते हुए पूछा, "अच्छा, इस कार्यक्रम का नाम 'होशंगाबाद विज्ञान' क्यों रखा होगा?"

एकलव्य के साथी कुछ बोलें, इसके पहले ही मास्साब बताने लगे, "यह कहानी होशंगाबाद से शुरू हुई थी इसीलिए इसका नाम 'होशंगाबाद विज्ञान' पड़ा।"

मास्साब ने प्रधानाध्यापक के मूड को भाँप लिया था। उन दोनों के बीच पहले भी कई दफा बहुत-से मसलों पर बातचीत हुई थी। हालाँकि, मास्साब उन्हें कई बार बहुत कुछ बताते, मगर प्रधानाध्यापक उन्हें नज़रअन्दाज़ कर देते। इसलिए इस बार मास्साब चाह रहे थे कि *एकलव्य* के साथी अपनी ओर से कुछ बताएँ।

स्रोत सदस्य कुछ देर तक चुप रहे। फिर वे बोले, "ये कार्यक्रम तो सरकार का है। सरकार के साथ हम लोग मिलकर, साझेदारी करते हुए, शिक्षा में बदलाव की कोशिश कर रहे हैं।"

प्रधानाध्यापक अब सवाल पर सवाल दागते जा रहे थे, "तो फिर सरकार इसको पूरे प्रदेश में क्यों नहीं फैलाती?"

थोड़ी देर तक चुप रहते हुए, प्रधानाध्यापक ने मास्साब की ओर नज़रें घूमाईं, और फिर दोबारा स्रोत सदस्य पर नज़रें थमा दीं, और बेखटके सवाल दोहराया, "भई, जब इतना अच्छा कार्यक्रम है तो फिर सबको फायदा मिले। मेरा मतलब है कि सबके साथ एक-जैसा बर्ताव क्यों नहीं होता?"

स्रोत सदस्य भी माजरे की नज़ाकत को भाँप चुके थे। वे इस विषय पर पहले भी बहुत कुछ कह चुके थे। दरअसल, इस सवाल से वे भी जूझ रहे थे कि आखिर अब करें तो करें क्या।

बहरहाल, उन्होंने कुछ बोलने की कोशिश की, "देखिए, इसके बारे में शासन को ही निर्णय लेना है।"

मास्साब ने बातचीत को नई दिशा देने की कोशिश करते हुए कहा, "अरे, *बाल विज्ञान* में तो बच्चों को भी खूब मज़ा आता है। बच्चे बड़े मज़े-से प्रयोग करते हैं।" इतना कहकर मास्साब रुक गए।

प्रधानाध्यापक फाइल को पलटते हुए बोले, "कुछ भी कहो, ये अगर-मगर तो हमारे शिक्षकों को भी परेशान करते रहते हैं। अब देखिए न,

इनका पिछली ट्रेनिंग का टीए-डीए आज तक नहीं मिला।”

मास्साब प्रधानाध्यापक की ओर मुखातिब होते हुए बोले, “आपको तो कई बार याद दिलाया, मगर डिपार्टमेंट वाले आपकी भी नहीं सुनते। आप कुछ कर सकते हो तो ज़रूर करो।”

स्रोत सदस्य सोच रहे थे कि कुछ करना होगा। वे चाय की चुस्की के साथ बोले, “ऐसा करते हैं कि संगम केन्द्र पर और ब्लॉक में जाकर आज ही बात करते हैं। संगम केन्द्र के प्रिंसिपल साहब के साथ जाकर बीईओ से मिल लेते हैं।”

वहीं प्रधानाध्यापक ने एक और प्रचलित समस्या रखी, जिस पर शिक्षा जगत के लोग अक्सर चर्चा करते रहते हैं। “इस *बाल विज्ञान* का आगे की कक्षाओं के साथ कोई तालमेल नहीं बैठता। बच्चे नौवीं में जाकर विज्ञान में डगमगा जाते हैं।”

दरअसल, स्रोत सदस्य आए-दिन इस समस्या से जूझ रहे थे। यह समस्या कोई इतनी गहरी तो थी नहीं। समस्या अगर थी भी तो *बाल विज्ञान* की वजह से नहीं थी। अध्ययनों से भी यह समझने की कोशिश की गई थी, और उस समझ को सबके सामने प्रस्तुत भी किया गया, कि समस्या दरअसल आगे की कक्षाओं की वजह से है, न कि *बाल विज्ञान* की वजह से।

स्रोत सदस्य ने जवाब दिया, “देखिए, आप ज़रा नौवीं-दसवीं वगैरह की विज्ञान की किताबों को तो देखें; तब समझ में आएगा कि असल दिक्कत क्या है। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के स्रोत दल ने इस पर गहराई से कार्य किया है। माध्यमिक कक्षाओं की विज्ञान की परम्परागत किताबों के साथ भी उच्च कक्षाओं का तालमेल नहीं बैठता। हाई स्कूल की विज्ञान की किताबें तो केवल जानकारी आधारित हैं।”

प्रधानाध्यापक ने आखिरी सवाल दाग दिया, “पीएमटी और पीईटी में *बाल विज्ञान* के कितने बच्चे निकलकर जाते हैं?”

इस सवाल पर भी अलग-अलग मंचों पर बहुत-सी चर्चा हुई थी। दरअसल, यह विज्ञान बच्चों को पीएमटी-पीईटी पास कराने के मकसद से नहीं बनाया गया। यह तो विज्ञान शिक्षण के मूलभूत सिद्धान्तों को

आधार बनाकर तैयार किया गया है। विज्ञान महज़ जानकारियों का पुलिन्दा नहीं है। यह तो करके सीखने का विषय है। विज्ञान की प्रक्रिया का उपयोग करते हुए, कक्षाकक्ष के दौरान ही जानकारी उभरती है।

क्यों अलग है 'होशंगाबाद विज्ञान'?

परम्परागत विज्ञान तथा 'होशंगाबाद विज्ञान' के पाठ्यक्रमों की तुलना में कई बुनियादी समस्याएँ हैं। इनका ज़िक्र किए बिना तुलना का कोई भी प्रयास सार्थक नहीं होगा। ये समस्याएँ पाठ्यक्रम की समझ से जुड़ी हुई हैं। इन दोनों ही पाठ्यक्रमों के दो सामान्य लक्ष्य हैं - विज्ञान का अध्यापन तथा वैज्ञानिक हुनर विकसित करना। परन्तु इन उद्देश्यों को अर्जित करने के लिए अपनाए गए साधनों व सामग्री की समझ में काफी अन्तर दिखाई देता है।

परम्परागत विज्ञान के पाठ्यक्रम में विज्ञान की काफी जानकारी को शामिल किया गया है। ऐसा लगता है कि मात्र जानकारी के भण्डार को विज्ञान के रूप में सिखाने का लक्ष्य है। वहीं दूसरी ओर, 'होशंगाबाद विज्ञान' के पाठ्यक्रम में विज्ञान की प्रक्रिया पर काफी ज़ोर दिया गया है।

'होशंगाबाद विज्ञान' के पाठ्यक्रम में जिस भी चीज़ को अध्ययन के लिए रखा गया है, उसे इस उद्देश्य से रखा गया है कि उस पर विस्तार से समझ बनाई जा सके। प्रयोग करना, प्रयोग के अवलोकन रिकॉर्ड करना, जानकारी व आँकड़े इकट्ठे करना, इनके आधार पर सोचकर निष्कर्ष निकालना, उस निष्कर्ष को एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में परखना तथा विभिन्न परिस्थितियों में लागू करना, पर्यावरण के माध्यम से सीखना, अपने शब्दों में अथवा चित्र के माध्यम से अभिव्यक्त करना, पाठ्यपुस्तक के अलावा अन्य स्थानों से जानकारी इकट्ठी करना, वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करना सीखना, सरल वैज्ञानिक उपकरण बनाना, विज्ञान व समाज के अन्तःसम्बन्धों को समझना आदि होशंगाबाद पाठ्यक्रम के अभिन्न अंग हैं। पूरी विषयवस्तु का संयोजन व प्रस्तुतीकरण इस ढंग से किया गया है कि वैज्ञानिक प्रक्रिया के ये विभिन्न आयाम उभरकर सामने आ सकें। इन पहलुओं से परिचित कराना तथा इनका अभ्यास करवाना पाठ्यक्रम का एक अहम लक्ष्य माना गया है।

बाल विज्ञान की विषयवस्तु में रासायनिक संकेत, सूत्र व समीकरण तथा अणु-परमाणु की अवधारणा का न होना एक उल्लेखनीय बात रही है। इन चीज़ों को शामिल न किए जाने के पीछे सोचे-समझे कारण एवं अच्छी-खासी समझ रही है। दरअसल, रसायन के मात्रात्मक अध्ययन में संकेत, सूत्र व समीकरण का बहुत महत्व है। किन्तु रासायनिक परिवर्तनों की गुणात्मक समझ बनाने में इनका

अधिक योगदान नहीं रहता। कैल्शियम को Ca या गन्धक के अम्ल को H_2SO_4 लिख देने भर से उनके रासायनिक गुणों को समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती। दूसरी बात यह है कि रासायनिक भाषा का इस्तेमाल करने के लिए उसके व्याकरण को समझना बहुत ज़रूरी है, वरना अर्थ का अनर्थ होने की सम्भावना ज़्यादा रहती है। अनुभव बताते हैं कि कक्षा आठवीं तक के बच्चे रसायनशास्त्र के व्याकरण (तुल्यांक भार, सन्तुलित समीकरण आदि) को समझने में असमर्थ होते हैं। अत: इस कार्य को आगे की कक्षाओं के लिए छोड़ना बेहतर समझा गया। इस सम्बन्ध में 'होशंगाबाद विज्ञान' बिरादरी की राय यह है कि छात्रों को रासायनिक पदार्थों, प्रक्रियाओं व परिवर्तनों की ठोस, अवलोकनीय जानकारी से लैस किया जाए तथा उनसे जुड़े कौशल विकसित किए जाएँ। वास्तविक रासायनिक क्रियाओं का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण बाद में शामिल किया जा सकता है।

अणु-परमाणु भी अवधारणा के स्तर पर काफी अमूर्त हैं। इनकी कल्पना कर पाना मानसिक विकास की एक अवस्था के बाद ही सम्भव है। चॉक के चूरे या केरोसीन की फूहार से अणु व परमाणु की अवधारणा समझाने की कोशिश करना हमें तो सन्तोष दे सकता है, मगर बच्चों को सम्भवतः यही समझ में आएगा कि चॉक का परमाणु ज़रूर एक सफेद कण होगा। इस तरह से, एक अनमने भाव से, अधूरी समझ देना शायद उचित नहीं है। यही मानकर 'होशंगाबाद विज्ञान' में इनका समावेश नहीं किया गया।

हम बाल केन्द्रित शिक्षा की बात तो काफी करते हैं, मगर बच्चों की उम्र के हिसाब से उन पर क्या और कितना बोझ डालना है, इसकी चिन्ताएँ 'होशंगाबाद विज्ञान' में दिखाई देती हैं। भले ही कम, मगर बेहतरी से सीखना हो सके, यह सोच इस कार्यक्रम की मज़बूत नींव है।

मर्ज़ और दवा

प्रधानाध्यापक से अन्य कई सारी चर्चाएँ भी हुईं। कुछ बातें वे समझ पा रहे थे, मगर ये सवाल अभिभावकों और शासकीय तंत्र की ओर से भी बारम्बार उठते रहते। स्कूल में स्रोत सदस्य के आने और कुछ घण्टे बिताने से मास्साब को काफी सम्बल मिल रहा था। उन्होंने स्रोत सदस्य से कहा, "आप एकाध महीने में आते रहें। हमें काफी मदद मिलेगी।" स्रोत सदस्य स्कूल से विदा ले चुके थे।

मास्साब दोबारा कक्षा में बच्चों के बीच प्रवेश कर चुके थे। बच्चे अभी भी *चकमक* में खोए हुए थे। मास्साब ने बच्चों से कहा, "चलो, रीडिंग ले लें?" बच्चे एक-एक करके मास्साब को पौधों की माप की रीडिंग बता रहे थे।

"तो सबने धागे और स्केल की

मदद से पौधों में वृद्धि को नापते हुए ज़रूरी बातों का ध्यान रखा है न?" मास्साब को भरोसा था कि बच्चों ने ठीक ही माप ली होगी।

मास्साब 'होशंगाबाद विज्ञान' नामक बुलेटिन के पन्ने पलटने लगे। बुलेटिन खास तौर पर शिक्षकों को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित की जा रही थी। यह दीगर बात है कि इसका प्रकाशन शुरू से ही अनियमित रहा। हालाँकि छपने के बाद, मासिक बैठकों और स्रोत सदस्यों के निजी प्रयासों से यह शिक्षक साथियों तक ज़रूर पहुँचती थी। बुलेटिन का स्वरूप अनघड़ किस्म का था। मगर शिक्षकों के अनुभव, मासिक बैठकें, अनुवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण की रपटें, सवालीराम, किट के विकल्प आदि पर तथ्यपरक सामग्री ज़रूर शामिल होती थी।

होशंगाबाद विज्ञान
दिसम्बर, 1984
अंक : 15

भोपाल गैस त्रासदी पर आधारित 'होशंगाबाद विज्ञान' बुलेटिन के अंक 15 का मुख्यपृष्ठ। यह बुलेटिन अपनी विषय-सामग्री में होशंगाबाद और विज्ञान पढ़ाने तक सीमित न होकर, शिक्षा और समाज में नवाचार का प्रतीक भी रहा।

बुलेटिन कई मायनों में शिक्षकों के बीच संवाद का माध्यम बना हुआ था। बुलेटिन का मकसद यही रहा है कि शिक्षकों के विचारों को अन्य शिक्षकों के साथ साझा किया जाए। बुलेटिन के प्रारम्भिक अंकों में इस कथन को सम्पादकीय में प्रकाशित किया गया था – 'मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की'।

जब-जब भी शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं को लेकर प्रयास किए गए, तब-तब यही परिणाम आए। इसका कारण कहीं यह तो नहीं कि जो शिक्षक दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का सामना करते हैं, उन्हें छोड़कर अन्य ऐसे लोगों ने समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की, जो कार्यक्षेत्र से कोसों दूर किसी स्वप्नलोक में खोए रहते हैं? कहते हैं कि 'जाके पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई'। यदि स्कूली शिक्षा की समस्याओं को वास्तव में सुलझाना

हो अथवा कोई रचनात्मक पहल करनी हो, तो उसके लिए जो शिक्षक उन समस्याओं से सीधे जुड़े हैं या जूझ रहे हैं, उनसे बड़ा विशेषज्ञ और कोई कैसे हो सकता है! किसी भी नवाचार के विषय में तो यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि उसके शैशवकाल में, पूरी सजगता से, नवाचार को क्रियान्वित करने वाले लोग संगठित रूप से उसे सँवारने और विकसित करने का कार्य करें। 'होशंगाबाद विज्ञान' बुलेटिन एक ऐसा मंच तैयार करने का प्रयत्न था जहाँ निर्भीक रूप से विचारों का आदान-प्रदान हो, तथा इससे सरोकार रखने वाले सभी लोग संगठित होकर अपनी समस्याओं का निदान स्वयं करने का प्रयत्न करें।

बड़े-बड़े वादे तो बुलेटिन करती रही मगर यह नियमित नहीं बन पाई। कई-कई बार बुलेटिन का प्रकाशन बन्द भी रहा। कई बार यह अपने मकसदों से भटकती दिखाई दी। कुछ अंक होविशिका से हटकर प्रकाशित किए गए। साक्षरता, रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद आदि कई मसलों पर बेहतर सामग्री का प्रकाशन किया गया, मगर ये सब कक्षाकक्ष में किए जाने वाले कार्य से सीधे जुड़े मसले नहीं थे। बेशक, इन सब मसलों से पूरा देश प्रभावित हो रहा था, ऐसे में कई लोगों का मानना जायज़ है कि उन मसलों पर भी तो समझ बनाने की आवश्यकता है। वहीं अन्य लोग यह भी मानते थे कि होविशिका को एक सीमित दायरे में देखने की आवश्यकता है। यह बहस व्यापक रूप से भी चल रही थी।

मास्साब बुलेटिन के इस अंक को पढ़ने के बाद, उसे पुराने अंकों को सहेजकर रखी गई फाइल में लगा चुके थे। बुलेटिन के पुराने अंकों को सँभालकर रखने की एक वजह यह भी थी कि उनमें कई लेख कक्षाकक्ष की प्रक्रियाओं को लेकर होते थे। साथ ही, कुछेक में परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र छपे हुए थे जो उन्हें सन्दर्भ-सामग्री के रूप में काम आते।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

चित्र: योगेश्वरी: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। साथ ही, म्यूरल और पोर्ट्रेट भी बनाती हैं। शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट से कला में डिप्लोमा। वर्तमान में, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विजुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर कर रही हैं।